आर.एन.आई. नं. 3653/57
मुद्रण तिथि 5 से 8 जुलाई, 2018
डाक प्रेषण तिथि 10 जुलाई, 2018

वर्ष : 76 अंक : 07
आषाढ, 2075 मूल्य : ₹ 10
पृष्ठ संख्या 100

डाक पंजीयन संख्या JaipurCity/413/2018-20
WPP Licence No. Jaipur City/WPP-04/2018-20
Posted at Jaipur RMS (PSO)

ISSN 2249-2011
हिन्दी मासिक

जिनवाणी

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच णमोक्कारो, सव्व-पावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं।।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
जयपुर

Website : www.jinwani.in

जिसे व्यक्तिगत मान और भोगों की भूख है, वह निष्पक्ष सेवा नहीं कर सकता।

ISSN 2249 - 2011 हिन्दी–मासिक

जिनवाणी

मंगल-मूल, धर्म की जननी, शाश्वत सुखदा कल्याणी।
द्रोह-मोह-छल-मान-मर्दिनी, फिर प्रगटी यह 'जिनवाणी'।।

卐 संरक्षक
अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ
प्लॉट नं. 2, नेहरुपार्क, जोधपुर (राज.), फोन-0291-2636763

卐 संस्थापक
श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़

卐 प्रकाशक
विनयचन्द डागा, मंत्री-सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
दुकान नं. 182-183 के ऊपर, बापू बाजार,
जयपुर-302003(राज.)
फोन-0141-2575997, फैक्स-0141-4068798
जिनवाणी वेबसाइट- www.jinwani.in

卐 प्रधान सम्पादक
प्रो. (डॉ.) धर्मचन्द जैन
सामायिक-स्वाध्याय भवन, प्लॉट नं. 2,
नेहरू पार्क, जोधपुर-342003 (राज.)
फोन : 0291-2626279
E-mail : editorjinvani@gmail.com
E-mail : jinvani@yahoo.co.in

卐 सह–सम्पादक
नौरतनमल मेहता, जोधपुर
डॉ. श्वेता जैन, जोधपुर

卐 भारत सरकार द्वारा प्रदत्त
रजिस्ट्रेशन नं. 3653/57
डाक पंजीयन सं.-JaipurCity/413/2018-20
WPP Licence No. JaipurCity-WPP-04/2018-20
Posted at Jaipur RMS (PSO)

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

जो सहस्सं सहस्साणं,
मासे-मासे गवं दए।
तस्सावि संजमो सेओ,
अदिंतस्स वि किंचण।।

-उत्तराध्ययन सूत्र, 9.40

दस लाख गाय दे मास मास,
यदि संयम से विरहित होकर।
दे दान नहीं कुछ भी, पर है,
संयम का मूल्य सदा बढ़कर।।

जुलाई, 2018
वीर निर्वाण संवत्, 2544
आषाढ़ , 2075

वर्ष 76 अंक 7

सदस्यता शुल्क

त्रिवार्षिक : 250 रु.
20 वर्षीय, देश में : 1000 रु.
20 वर्षीय, विदेश में : 12500 रु.

स्तम्भ सदस्यता : 21000/-
संरक्षक सदस्यता : 11000/-
साहित्य आजीवन सदस्यता- 4000/-

एक प्रति का मूल्य : 10 रु.

शुल्क/साभार नकद राशि 'जिनवाणी' बैंक खाता संख्या SBI 51026632986 IFSC No. SBIN 0031843 में जमा कराकर जमापर्ची (काउन्टर-प्रति) अथवा ड्राफ्ट भेजने का पता 'जिनवाणी', दुकान नं. 182-183 के ऊपर, बापू बाजार, जयपुर-302003 (राज.)
फोन नं.0141-2575997, फैक्स : 0141-4068798, E-mail:sgpmandal@yahoo.in

मुद्रक : दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जयपुर, फोन- 0141-2562929

नोट- यह आवश्यक नहीं कि लेखकों के विचारों से सम्पादक या मण्डल की सहमति हो।

विषयानुक्रम

सम्पादकीय-	द्रष्टा होने की सार्थकता	-डॉ. धर्मचन्द जैन	5
सम्पादकीय (2)-	जिनवाणी की हीरक यात्रा (19)	-डॉ. धर्मचन्द जैन	8
अमृत-चिन्तन-	आगम-वाणी		12
विचार-वारिधि-	परिवार की समरसता एवं सुसंस्कार	-आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा.	14
प्रवचन-	दोषों की शुद्धि : बने लक्ष्य	-आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा.	15
	धर्मी कौन? अधर्मी कौन?	-श्रद्धेय श्री महेन्द्रमुनिजी म.सा.	19
	संघनायक की सोच में संघहितैषिता	-श्रद्धेय श्री मनीषमुनिजी म.सा.	22
अध्यात्म-व्यवहार-	अष्टम पापस्थानक : माया	-आचार्य विजयरत्नसुंदरसूरिजी	24
युवा-स्तम्भ-	जैन धर्म में सप्त दुर्व्यसन-त्याग की सामाजिक प्रासंगिकता	-समणी डॉ. शशिप्रज्ञा	28
अंग्रेजी-स्तम्भ-	**Jaina Concept of Aparigraha (2)**	*-Prof. Sagarmal Jain*	33
तत्त्व-चर्चा-	जिज्ञासा-समाधान	-संकलित	38
समाज-चिन्तन-	क्या विद्वान् अभिमानी होते हैं?	-प्रो. वीरसागर जैन	39
	जागो ग्राहक जागो, हिंसक चीज़ें त्यागो	-डॉ. दिलीप धींग	41
तत्त्व-चर्चा-	आओ मिलकर ज्ञान बढ़ाएँ	-श्री धर्मचन्द जैन	43
प्रश्नमाला-	प्रश्नमाला (5)	-श्रद्धेय श्री नन्दीषेणमुनिजी म.सा.	46
जीवन-व्यवहार-	बुढ़ापे में जीवन जीने की कला	-श्री शान्तिलाल कुचेरिया	47
	धार्मिक क्रियाओं से बेहतर हो जीवन	-श्रीमती निधि दिनेश लोढ़ा	52
नारी-स्तम्भ-	धर्म जीवन में क्यों आवश्यक है?	-श्री कल्पेशकुमार जैन	49
कविता/गीत-	प्रभु से प्रार्थना	-श्रद्धेय श्री लोकचन्द्रजी म.सा.	11
	आदमी	-श्री रोड़ीलाल धींग	21
	ऐ मेरे मन ज़रा.....	-श्रद्धेय श्री गौतममुनिजी म.सा.	27
	एकविंशति प्रणति	-श्रद्धेय श्री योगेशमुनिजी म.सा.	32
	नारी ये कमज़ोर नहीं	-डॉ. रेनू सिरोया 'कुमुदिनी'	51
	वक्त जा रहा है....	-श्री मोहन कोठारी 'विनर'	79
विचार -	सच्ची बातें	-श्रीमती कंचन सुराणा	40
	दादा-दादी के प्रति.....	-श्री मदनलाल बागमार	45
	चातुर्मास का अर्थ	-श्री अभयकुमार जैन	45
	प्रेरणा टॉवर	-श्री नितेश नागोता जैन	54
साहित्य-समीक्षा-	नूतन साहित्य	-डॉ. श्वेता जैन	53
चातुर्मास-सूची-	रत्नसंघ के घोषित चातुर्मास	-संकलित	55
समाचार विविधा-	समाचार-संकलन	-संकलित	63
	साभार-प्राप्ति-स्वीकार	-संकलित	78
	विभिन्न आलेख/रचनाएँ	-विभिन्न लेखक	82

युवा-स्तम्भ

जैन धर्म में सप्त दुर्व्यसन-त्याग की सामाजिक प्रासंगिकता

समणी डॉ. शशिप्रज्ञा

सप्त दुर्व्यसन का त्याग गृहस्थ धर्म की साधना का प्रथम चरण है। इनके त्याग को गृहस्थ आचार के प्राथमिक नियम के रूप में स्वीकार किया गया है। सप्त दुर्व्यसन हैं-1. जूआ खेलना, 2. मांसाहार, 3. मद्यपान, 4. वेश्यागमन, 5. परस्त्रीगमन, 6. शिकार खेलना और 7. चोरी कर्म (चोरी करना)। ऐसे तो व्यसन शब्द से हम बुरी आदत समझते हैं, पर वास्तव में व्यसन किसे कहते हैं?

व्यसन शब्द की परिभाषा- 'व्यसन' शब्द संस्कृत भाषा का है। जिन प्रवृत्तियों का परिणाम कष्टकर हो, उन प्रवृत्तियों को व्यसन कहा गया है। व्यसन एक ऐसी आदत है, जिसके बिना आदमी रह नहीं सकता। व्यसनों की प्रवृत्ति अचानक नहीं होती। पहले व्यक्ति किसी आकर्षण से इन्हें अपनाता है, फिर एक ही कार्य को अनेक बार दोहराने पर व्यसन बन जाता है। व्यसन बिना बोये हुए ऐसे विष वृक्ष हैं, जो मानवीय गुणों के गौरव को गारे में मिला देते हैं। ये विषवृक्ष जिस जीवन भूमि पर पैदा होते हैं, उसमें सदाचार के सुमन खिल ही नहीं सकते, जैसे अमरबेल अपने आश्रयदाता वृक्ष के सत्त्व को चूसकर उसे सुखा देती है, वैसे ही व्यसन अपने आश्रयदाता (व्यसनी) को नष्ट कर देते हैं। व्यसनी व्यक्तियों का सामाजिक जीवन नीरस हो जाता है, पारिवारिक जीवन संघर्षमय हो जाता है और सामाजिक जीवन में उसकी प्रतिष्ठा धूमिल हो जाती है।

आजकल इन व्यसनों के अतिरिक्त अनेक व्यसन, स्वास्थ्य, संस्कृति एवं सभ्यता पर कुठाराघात कर रहे हैं। बीड़ी, सिगरेट, कोका कोला, पानपराग, जर्दा, गुटखा एवं अनेक मादक द्रव्य (Drugs) इत्यादि सेवन से मानव की विवेक चेतना सुप्त हो जाती है फिर वह अकरणीय कार्य करने से नहीं संकुचाता है।

सप्त दुर्व्यसन-त्याग और उसकी प्रासंगिकता

जैन धर्म में सप्त दुर्व्यसनों का त्याग गृहस्थ-धर्म की साधना का प्रथम चरण है। उनके त्याग को गृहस्थ-आचार के मूल गुणों के रूप में स्वीकार किया गया है। 'वसुनन्दि-श्रावकाचार' ग्रंथ में सप्त दुर्व्यसनों के त्याग का विधान मिलता है। सप्त दुर्व्यसनों के सेवन से व्यक्ति का कितना चारित्रिक पतन होता है, इसे हर कोई जानता है।

1. **द्यूत-क्रीड़ा-** वर्तमान युग में से सट्टा, लॉटरी, शेयर आदि द्यूत-क्रीड़ा के विविध रूप प्रचलित हो गये हैं। जूआ खेलने के कारण अनेक परिवारों का जीवन संकट में पड़ जाता है। अत: इस दुर्व्यसन के त्याग को कौन अप्रासंगिक कह सकता है। द्यूत-क्रीड़ा के त्याग की प्रासंगिकता के सम्बन्ध में कोई भी विवेकशील मनुष्य दो मत नहीं हो सकता। वस्तुत: वर्तमान युग में द्यूत-क्रीड़ा के जो विविध रूप हमारे सामने उभर कर आये हैं, उनका आधार केवल मनोरंजन नहीं है, अपितु उसके पीछे बिना किसी श्रम के अर्थोपार्जन की दुष्प्रवृत्ति है। सट्टे के व्यवसाय का प्रवेश जैन परिवारों में सर्वाधिक हुआ है। व्यक्ति जब इस प्रकार के धन्धे में अपने को नियोजित कर लेता है, तो श्रमपूर्वक अर्थोपार्जन के प्रति उसकी निष्ठा समाप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में चोरी, ठगी आदि दूसरी बुराइयाँ पनपती हैं। आज इसके प्रकट-अप्रकट विविध रूप हमारे समक्ष आ रहे हैं। उनसे सतर्क रहना आवश्यक है, अन्यथा हमारी भावी पीढ़ी में श्रमपूर्वक अर्थोपार्जन की निष्ठा समाप्त हो जायेगी। यद्यपि इस दुर्गुण का प्रारम्भ एक मनोरंजन के साधन के रूप में

होता है, किन्तु आगे चलकर यह भयंकर परिणाम उपस्थित करता है। आज का युवावर्ग जो इन प्रवृत्तियों में अधिक रस लेता है, वह इसके दुष्परिणामों को जानते हुए भी अपनी भावी पीढ़ी को इससे रोक पाने में असफल रहेगा। जूआ निषेध एक प्रकार से स्वस्थ, श्रमशील एवं शान्त परिवार एवं समाज की आधार शिला है।

2. **मांसाहार**–विश्व में यदि शाकाहार का पूर्ण समर्थक कोई धर्म है, तो वह मात्र जैन-धर्म है। जैनधर्म में गृहस्थोपासक के लिए मांसाहार सर्वथा त्याज्य माना गया है। किन्तु आज समाज में मांसाहार के प्रति एक ललक बढ़ती जा रही है और अनेक जैन परिवारों में उसका प्रवेश हो गया है। इस प्रसंग पर भारतीय पालियामेंट के किसी सदस्य के पारिवारिक विवाह के दौरान किसी होटल के बैरा ने एक जैन बन्धु से पूछा- आज वेज लेगें या नोन वेज। यह सुनते ही एक महिला बोल उठी कि क्या आप जैन नहीं है? उस व्यक्ति की आंखें शर्म से झुक गई।

मांसाहार के निषेध के पीछे मात्र हिंसा और अहिंसा का प्रश्न ही नहीं, अपितु अन्य दूसरे भी कारण हैं। यह सत्य है कि मांस का उत्पादन बिना हिंसा के सम्भव नहीं है और हिंसा क्रूरता के बिना सम्भव नहीं है। यह सही है कि मानवीय आहार के अन्य साधन में भी किसी सीमा तक हिंसा जुड़ी हुई है, किन्तु मांसाहार के निमित्त जो हिंसा या वध किया जाता है, उसके लिए वध-कर्त्ता का अधिक क्रूर होना अनिवार्य है। क्रूरता के कारण दया, करुणा, आत्मीयता जैसे कोमल गुणों का ह्रास होता है और समाज में भय, आतंक एवं हिंसा का ताण्डव प्रारम्भ हो जाता है। यह अनुभूत सत्य है कि वे सभी देश एवं कौमें, जो मांसाहारी हैं और हिंसा जिनके धर्म का एक अंग मान लिया गया है, वहां होने वाले हिंसक-ताण्डव को देखकर आज भी दिल दहल उठता है। यदि दया, करूणा, वात्सत्य का विकास करना है, तो मांसाहार का त्याग अपेक्षित है। दूसरे, मांसाहार की निरर्थकता को मानव-शरीर की संरचना के आधार पर भी सिद्ध किया जा सकता है। मानव-शरीर की संरचना उसे निरामिष प्राणी ही सिद्ध करती है। मांसाहार मानव-स्वास्थ्य के लिए कितना हानिकारक है, यह बात अनेक वैज्ञानिक अनुसन्धानों से प्रमाणित हो चुका है।

मांसाहार के समर्थन में सबसे बड़ा तर्क यह दिया जाता है कि बढ़ती हुई मानव-जाति की आबादी को देखते हुए भविष्य में मांसाहार के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प शेष नहीं रहेगा, जिससे मानव जाति की क्षुधा को शान्त किया जा सके। किन्तु उसके विपरीत कृषि के क्षेत्र में भी ऐसे अनेक वैज्ञानिक प्रयोग हुए हैं और हो रहे हैं, जो स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित करते हैं कि मनुष्य को अभी शताब्दियों तक निरामिष भोजी बनाकर जिलाया जा सकता है। अनेक आर्थिक सर्वेक्षणों में यह भी प्रमाणित हो चुका है कि शाकाहार मांसाहार की अपेक्षा अधिक सुलभ और सस्ता है। अत: मनुष्य की स्वाद-लोलुपता के अतिरिक्त और कोई तर्क ऐसा नहीं है, जो मांसाहार का समर्थक हो सके। शक्तिदायक आहार के रूप में मांसाहार के समर्थन का एक खोखला दावा है। यह सिद्ध हो चुका है कि मांसाहारियों की अपेक्षा शाकाहारी अधिक शक्ति-सम्पन्न होते हैं और उनमें अधिक काम करने की क्षमता होती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हमें मांसाहार और शाकाहार के गुण-दोषों की समीक्षा करते हुए तुलनात्मक विवरण से युक्त ऐसा साहित्य प्रकाशित करना होगा, जो आज के युवक को तर्क-संगत रूप से यह अहसास करवा सके कि मांसाहार की अपेक्षा शाकाहार एक उपयुक्त भोजन है।

3. **मद्यपान**– तीसरा दुर्व्यसन मद्यपान माना गया है और गृहस्थोपासक को इसके त्याग का स्पष्ट निर्देश दिया गया है। बुद्ध ने तो इस दुष्प्रवृत्ति को रोकने के लिए

अपने पंचशीलों में मद्यपान-निषेध को स्थान दिया था। यह एक ऐसी बुराई है, जो मानव समाज के गरीब और अमीर दोनों ही वर्गों में हावी है। जैन परम्परा में मद्यपान का निषेध न केवल इसलिए किया गया कि वह हिंसा से उत्पादित है, अपितु इसलिए कि इससे मानवीय विवेक कुण्ठित होता है और जब मानवीय विवेक ही कुण्ठित हो जाएगा तो दूसरी सारी बुराइयाँ व्यक्ति के जीवन में स्वाभाविक रूप से प्रविष्ट हो जायेंगी। आर्थिक और चारित्रिक सभी प्रकार के दुराचरणों के मूल में नशीले पदार्थों का सेवन है। सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि मादक द्रव्यों के सेवन से मनुष्य अपनी मानसिक चिन्ताओं को भूल कर अपने तनावों को कम करता है, किन्तु यह एक भ्रान्त धारणा ही है। तनाव के कारण जीवित रखकर, केवल क्षण भर के लिए अपने विवेक को खो कर विस्मृति के क्षणों में जाना, तनावों के निराकरण एवं परिमार्जन का सार्थक उपाय नहीं है। मद्यपान को सभी दुर्गुणों का द्वार कहा गया है। कुछ महीनों पूर्व रूस से ध्यान शिविर में भाग लेने के लिए 7 महिलाएं तुलसी अध्यात्म नीडम् लाडनूँ में पहुँची। ध्यान की कक्षा के बाद जब उनसे चर्चा हुई तो ज्ञात हुआ कि पाँच महिलाएं अपने पति को तलाक दे चुकी हैं एवं वे अकेली अपने बच्चों की देखभाल कर रही है। जब उनके तनाव एवं तलाक का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि पति शराब पीता है। कमाई का सारा पैसा उसी में लग जाता है। उसे हमारी एवं बच्चों की कोई चिन्ता नहीं है। ऐसी स्थिति में उससे परेशान हो हमने तलाक दे दिया, यहाँ ध्यान शिविर में आने पर हमें अपने जीवन में शान्ति प्राप्त हुई। सारी बुराइयाँ विवेक के कुण्ठित होने पर पनपती हैं और मद्यमान विवेक को कुण्ठित करता है। अत: मनुष्य के मानवीय गुणों को जीवित रखने के लिए इसका त्याग आवश्यक है। मनुष्य और पशु के बीच यदि कोई विभाजक रेखा है तो वह विवेक ही है और जब विवेक ही समाप्त हो जायेगा तो मनुष्य और पशु में कोई अन्तर ही नहीं रह जाएगा। मादक द्रव्यों का सेवन मनुष्य को मानवीय स्तर से गिराकर उसे पाश्विक स्तर पर पहुँचा देता है। यह भी एक सुविदित तथ्य है कि जब यह दुर्व्यसन गले लग जाता है तो अपनी अति पर पहुँचाए बिना समाप्त नहीं होता। वह न केवल विवेक को ही समाप्त करता है अपितु आर्थिक और शारीरिक दृष्टि से व्यक्ति को जर्जर बना देता है। आज हमें इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करना होगा कि समाज को इससे किस प्रकार बचाया जाए। जैन समाज ने जो चारित्रिक गरिमा, आर्थिक सम्पन्नता तथा समाज में प्रतिष्ठा अर्जित की थी उसका मूलभूत आधार इन दुर्व्यसनों से मुक्त रहना ही था। इन दुर्व्यसनों के प्रवेश के साथ हमारी चारित्रिक उच्चता और सामाजिक प्रतिष्ठा धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है और तब एक दिन ऐसा भी आएगा जब हम अपनी आर्थिक सम्पन्नता से हाथ धो बैठेंगे।

4. **वेश्यागमन-** श्रावक के सप्त दुर्व्यसन-त्याग के अन्तर्गत वेश्यागमन के त्याग का भी विधान किया गया है। यह सुनिश्चित सत्य है कि वेश्यागमन न केवल सामाजिक दृष्टि से आवांछनीय है, अपितु आर्थिक एवं शारीरिक-स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अवांछनीय माना गया है। सामाजिक सदाचार और पारिवारिक सुख-शान्ति के लिए वेश्यागमन का त्याग उचित ही है। वेश्यागमन एड्स जैसी जानलेवा बीमारी हो जाती है। न केवल खुली वासना को प्रोत्साहन मिलता है, अपितु वीर्य का क्षरण भी होता हैं। वीर्यहीन युवक राष्ट्र के चहुँमुखी विकास में योगदान नहीं दे सकता। यह एक शुभ संकेत ही है कि न केवल जैन समाज में अपितु समग्र भारतीय समाज में वेश्यागमन की प्रवृत्ति और वेश्यावृत्ति धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही है। यद्यपि इस प्रवृत्ति के जो दूसरे रूप सामने आ रहे हैं वे उसकी अपेक्षा अधिक चिन्तनीय हैं। यहाँ हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि

चाहे खुले रूप में वेश्यावृत्ति पर कुछ अंकुश लगा हो, किन्तु छद्मरूप में यह प्रवृत्ति बढ़ी ही है। अत: जैन धर्म में इसका शक्ति संरक्षण हेतु निषेध किया गया।

5. **परस्त्रीगमन–** परस्त्रीगमन परिवार एवं समाज व्यवस्था का घातक है, इसके परिणामस्वरूप न केवल एक ही परिवार का पारिवारिक जीवन दूषित एवं अशान्त बनता है, अपितु अनेक परिवारों के जीवन अशान्त बन जाते हैं। वेश्यावृत्ति की अपेक्षा यह अधिक दोषपूर्ण है। क्योंकि इसमें छल-छद्म और जीवन का दोहरापन भी जुड़ जाता है। अत: सामाजिक दृष्टि से यह बहुत बड़ा अपराध है। आज कामवासना की तृप्ति का यह छद्म रूप अधिक फैलता जा रहा है। पाश्चात्त्य देशों की वासनात्मक उच्छृंखलता का प्रभाव हमारे देश में भी हुआ है। क्लबों और होटलों के माध्यम से यह विकृति अधिक तेजी से व्याप्त होती जा रही है। जैन समाज का भी कुछ सम्पन्न एवं धनी वर्ग इसकी गिरफ्त में आने लगा है। यद्यपि अभी समाज का बहुत बड़ा भाग इस दुर्गुण से मुक्त है, किन्तु धीरे-धीरे फैल रही विकृति के प्रति सजग होना आवश्यक है।

6. **शिकार–** मनोरंजन के निमित्त अथवा मांसाहार के लिए प्राणियों का वध करना शिकार कहा जाता है। यह व्यक्ति को क्रूर बनाता है। यदि मनुष्य को मानवीय कोमल गुणों से युक्त बनाये रखना है तो इस वृत्ति का त्याग अपेक्षित है। आज शासन द्वारा भी वन्य प्राणियों के संरक्षण के लिए शिकार की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाया जा रहा है। अत: इस प्रवृत्ति के त्याग का औचित्य निर्विवाद है। आज हम इस बात को गौरव से कह सकते हैं कि जैन समाज इस दुर्गुण से मुक्त है, किन्तु आज सौन्दर्य-प्रसाधनों, जिनका उपभोग समाज में धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है, इस निमित्त अव्यक्त रूप से हो रही हिंसा के प्रति सजग रहना आवश्यक है। क्योंकि उनका उत्पादन उपभोक्ताओं के निमित्त ही होता है और यदि हम उनका उपभोग करते हैं तो उस हिंसा एवं क्रूरता से अपने को बचा नहीं सकते हैं। सौन्दर्य-प्रसाधनों के निर्माण एवं परीक्षण के निमित्त हिंसा के जो क्रूरतम तरीके अपनाए जाते हैं वे जैन पत्र-पत्रिकाओं में बहुचर्चित रहे हैं। अत: उन सब पर यहां विचार करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। किन्तु इस सन्दर्भ में शिकार खेलने का त्याग कर हमें सजग अवश्य रहना चाहिए कि हम क्रूरता के भागी न बनें।

7. **चौर्य-कर्म–** दूसरों की सम्पत्ति या दूसरों के अधिकार की वस्तुओं को उनकी बिना अनुमति के ग्रहण करना चोरी है। अपनी आवश्यकता से अधिक संग्रह और संचय को भी चोरी कहा जा सकता है। जैनाचार्यों ने व्यावसायिक अप्रमाणिकता, कर-वंचन तथा राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध कार्य करना आदि को भी चोरी के अन्तर्गत माना है। यद्यपि सामान्यतया जैन परिवार इस दुर्व्यसन से मुक्त कहे जा सकते हैं, किन्तु जैनाचार्यों ने इसकी जो सूक्ष्म व्याख्या की है, उस आधार पर आज का गृहस्थ वर्ग इस दुर्व्यसन से कितना मुक्त है, यह कहना कठिन है। व्यावसायिक अप्रामाणिकता और कर-वंचन आज सामान्य हो गये हैं। व्यावसायिक अप्रामाणिकता के इस युग में इसकी प्रासंगिकता को नकारा तो नहीं जा सकता, किन्तु वर्तमान युग में कौन इससे कितना बच सकेगा, इस पर व्यावहारिक दृष्टि से विचार करना अपेक्षित है।

इस प्रकार जैन धर्म-दर्शन में निर्धारित सप्त कुव्यसन वर्जन का विधान वास्तव में मानव गरिमा हेतु एवं किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए अत्यन्त अनिवार्य है। पाश्चात्त्य देशों में जुआ खेलने से व्यक्ति आर्थिक अभाव में मानसिक अवसाद के शिकार हो रहे हैं। मांसाहार सेवन से पाश्विक वृत्ति बढ़ रही है, हिंसा एवं मार-काट बढ़ रही है। मद्यपान से कर्त्तव्य निष्ठा एवं परिवार के प्रति दायित्व बोध की चेतना कम हो रही है। वेश्यागमन एवं परस्त्रीगमन से पारिवारिक सम्बन्धों में

दरार, रिश्तों की मधुरता घटती जा रही है। बच्चों का अभिभावक के प्रति असम्मानपूर्ण दृष्टिकोण, पारिवारिक सदस्यों में आपसी अविश्वास एवं असंतोष के कारण तथा अवैध सम्बन्धों के कारण परिवारों में तलाक की घटनाएं बढ़ रही हैं, एकल परिवारों (मां एवं पुत्र/पुत्री) की संख्या बढ़ रही है। ऐसे परिवार के बच्चों के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना कैसे की जा सकती है, जो भावी युग के कर्णधार हैं। चौर्य व्रत के अभाव में आर्थिक पारदर्शिता के अभाव में, परिवार, समाज, संगठन बिखर रहे हैं। राजनैतिक क्षेत्र में आर्थिक घोटालों की लम्बी कतार नागरिकों के मन में शासक के प्रति अविश्वास की चेतना को विकसित कर रही है एवं उन्हें आक्रामक बना रही है। कौटिल्य के अर्थशास्त्रानुसार शासक शोषणमुक्त एवं न्याययुक्त शासन चलाता है तो इससे व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र सभी का विकास हो सकता है।

-जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूँ-341306 (राज.)

एकविंशति प्रणति

श्रद्धेय श्री योगेशमुनिजी म.सा.

नमो नमो त्रिकाल	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
छः काया प्रतिपाल	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
संघनायक, संघ सरताज	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
प्रखर व प्रेरित करती आवाज	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
सरलता विनम्रता के धनी	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
धुन के धनी जगत के मणि	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
ज्ञान में निपुण, मौन से पूर्ण	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
दर्शन चारित्र में उत्तीर्ण, तप से परिपूर्ण	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
मोती मोहिनी के लाड़ले	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
संघ रथ को उन्नति पथ ले चले	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
आचरण में विवेक, हृदय में संवेग	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
तप का है तेज, दूर है आवेग	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
जिनशासन चमकाया, हस्ती उपवन महकाया	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
महाव्रत दान दे भव्यों का जीवन सजाया	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
संयम के पूर्ण हिमायती, चाहते नहीं ख्याति	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
गुरु के प्रति अद्भुत अविचल भक्ति	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
व्यसनमुक्ति, निशि भोज त्याग का नारा	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
जप एवं स्वाध्याय जिन्हें प्यारा	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
आगमज्ञाता, श्रेष्ठ अनुशास्ता	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
नयनों में नूर आनन पर तेज झलकता	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी
पूर्व का पुण्य 'योग' था जो शरणा मिला	–	गुरुवर हीराचन्द्रजी

-आचार्य भगवन्त श्री हीराचन्द्रजी म.सा. के 28 वें आचार्य पदारोहण दिवस पर प्रवचन में प्रस्तुत

षडावश्यक की सामाजिक उपयोगिता

1. सामायिक का प्रतिपाद्य है - प्राणातिपात आदि अठारह सावद्य - सपापकारी प्रवृत्तियों से विरति।

2. चतुर्विंषतिस्तव - दर्शनविशोधि, पुनर्बोधिलाभ और कर्मक्षय के लिये अर्हतों की उत्कीर्तना।

3. वन्दना - चारित्रसम्पन्न, गुण सम्पन्न व्यक्तियों का वन्दना, नमस्कार द्वारा सम्मान-बहुमान करना।

4. प्रतिक्रमण - मूलगुणों-उत्तरगुणों में स्खलना होने पर संवेगसम्पन्न हो, विशुद्धभावों से प्रमाद की स्मृति कर अपनी निन्दा करना, एवं गर्हा करना।

5. कायोत्सर्ग - चारित्र आदि के अतिचाररूप व्रण की, आलोचना आदि दस प्रकार के प्रायश्चित द्वारा चिकित्सा करना।

6. प्रत्याख्यान - मूल और उत्तरगुणों की प्रतिपत्ति तथा उनको निरतिचार रूप में जैसे धारण किया जाए, उस रूप में अर्थ की प्ररूपणा करना।

सामायिक - आचार्य जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने सामायिक को चौदह पूर्वों का सार बताया है। सामायिक समत्व की साधना का छोटा-सा उपक्रम है। 24 घंटे में समता को कायम रखने का एक मानसिक संकल्प है। जीवन की अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में जो संतुलित रहता है, उसके जीवन में सामायिक जीवन्त बन जाती है। सामायिक से सहिष्णुता का विकास होता है जिससे क्षणिक आवेश में उत्पन्न होने वाली समस्याओं, जैसे- आत्महत्या, तलाक, कत्ल, पारिवारिक असामंजस्य, बंटवारा आदि को विराम मिल सकता है एवं भावात्मक संतुलन का विकास होता है। सामायिक समता की साधना का एक लघु अनुष्ठान है। प्रत्येक जाति का व्यक्ति सामायिक साधना कर अपनी आत्मा की सन्निधि पा सकता है। बहिर्मुखता से अपनी चेतना को अन्तर्मुखी बना सकता है। पूनिया श्रावक जैसी उत्कृष्ट भाव से सामायिक कर उत्कृष्ट शाश्वत आत्मिक सुख को प्राप्त कर सकता है एवं परिवार तथा राष्ट्र में शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की स्थापना कर सकता है।

चतुर्विंशति स्तव - चतुर्विंशति स्तव का उत्कृष्ट लाभ है - अपूर्व सम्यक्-दर्शन की उपलब्धि, जो कषायोपशमन की निष्पत्ति है। जो तीर्थंकरों के गुणानुराग में लीन रहता है, वह अपनी आत्मा को सर्वदा शुभ भावना से भावित करता है एवं भावना के परिणमन स्वरूप तीर्थंकरों के वीतराग, वीतद्वेष जैसे गुणों का अपने भीतर भी संक्रमण होने लगता है। गुणी भी गुणों की स्तुति कर, भक्त भी भगवान की स्तुति के माध्यम से भगवत्ता को प्राप्त कर सकता है। यह स्तुति द्वारा गुण संक्रमण का व्यावहारिक चमत्कार है। स्तुति एक प्रकार से हार्दिक प्रार्थना है, दुआ है। जहां सारी दवाएं अपना काम नहीं कर पाती वहां मात्र दुआ से शारीरिक स्वास्थ्य की उपलब्धि हो जाती है। स्तुति वास्तव में भक्त की भगवान से तादात्म्य अवस्था है, जिससे विभिन्न विघ्न, बाधाएं तथा अशुभ कर्मोदय का नाश हो जाता है। स्तुति से आध्यात्मिक संपदा के साथ-साथ कभी-कभी भौतिक संपदा स्वत: गौण रूप में प्राप्त हो जाती है। तीर्थंकरों की स्तुति से जो पूर्व संचित कर्म हैं, वे क्षय को प्राप्त हो जाते हैं। स्तुति से आत्मगुणों में पौरुष जागृत होता है, जिससे हर व्यक्ति बिन्दु से सिन्धु, भक्त से भगवान बन सकता है। स्तुति से पदार्थ केन्द्रित चेतना आत्म-केन्द्रित बनती है। अतीन्द्रिय चेतना के जागरण का विकास होता है। विकल्प का स्थान संकल्प ले लेता है एवं अन्तदृष्टि जागने से सुख-दु:ख की धारणाएं बदल जाती हैं।

वन्दना - भगवान महावीर से पूछा गया - भगवन्! वंदना से जीव को क्या प्राप्त होता है? समाधान मिला कि वंदना से जीव नीच गौत्र का क्षय तथा उच्च गौत्र का बंध करता है। वन्दना से जीव नीच-कुल में उत्पन्न करने वाले कर्मों को क्षीण करता है, उच्च-कुल में उत्पन्न करने वाले कर्मों को अर्जन करता है। वह अप्रतिहत

सौभाग्य को प्राप्त करता है। उसे सर्वत्र अनुकूलता मिलती है। उसकी आज्ञा सहज सभी स्वीकार करते हैं। ऐसा अबाधित सौभाग्य एवं जनता की अनुकूल भावना प्राप्त होती है। वंदन करने वाला व्यक्ति विनय के द्वारा लोकप्रियता प्राप्त करता है। भगवती सूत्र के अनुसार वंदन के फलस्वरूप गुरुजनों के सत्संग का लाभ होता है। सत्संग से शास्त्र-श्रवण, शास्त्र से ज्ञान, ज्ञान से विज्ञान और फिर क्रमश: प्रत्याख्यान- संयम-अनाश्रव-तप-कर्मक्षय-अक्रिया और अन्त में सिद्धि उपलब्ध होती है।

प्रतिक्रमण - प्रतिक्रमण एक अनुपम आत्म-स्नान है। यह आत्मशोधन की वैज्ञानिक पद्धति है। इस पद्धति का भाव क्रिया पूर्वक प्रयोग करने पर सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास हो सकता है। प्रतिक्रमण रूपी आत्मदर्पण में अपने गुणों एवं कमियों के दर्शन द्वारा शोधन की स्वत: प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। हर क्षेत्र में सफलता के लिये प्रतिक्रमण की प्रक्रिया से गुजरना अत्यन्त लाभदायक है। इससे व्यक्ति ऋजु होकर अपने गुण-दोषों की सही समीक्षा करता है एवं स्वत: सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। गलती की उचित स्थान में आलोचना कर आत्मा कर्मों से हल्की हो जाती है एवं साधक आराधक बन मोक्ष मार्ग की ओर अपना पथ प्रशस्त करता है। प्रतिदिन का प्रतिक्रमण, प्रतिदिन का आत्मशोधन, प्रतिदिन आत्मा के समीप ले जाने में सहायक बनता है। जो आत्मा के आस-पास रहता है, वह फिर राग-द्वेष रूपी चिकनाहट एवं योग रूपी चंचलता से मलिन होने वाली आत्मा से अपनी चेतना को हटा देता है। आत्मा क्रमश: अव्रत, अप्रमाद, अकषाय एवं अयोग की दिशा में गति करते हुए मोक्ष-धाम के साध्य को सिद्ध कर सकती है। आत्मानुशासन की संस्कृति जागृत होने पर अनैतिकता, भ्रष्टाचार, अपराध, आतंकवाद, पर्यावरण प्रदूषण, पारिवारिक बिखराव की अपसंस्कृति आदि समसामयिक समस्याओं का समाधान भी संभव हैं।

कायोत्सर्ग - आचार्य भद्रबाहु ने आवश्यक निर्युक्ति में कायोत्सर्ग के निम्न लाभ बताए हैं -

1. देहजाड्य शुद्धि - कायोत्सर्ग से श्लेष्म आदि के दोष नष्ट हो जाते हैं। इसलिये उनसे उत्पन्न होने वाली जड़ता भी समाप्त हो जाती है।

2. मतिजाड्य शुद्धि - कायोत्सर्ग से चित्त एकाग्र होता है। इससे बौद्धिक जड़ता नष्ट होकर उसमें तीक्ष्णता आती है।

3. सुख-दु:ख तितिक्षा - कायोत्सर्ग से सुख-दु:ख को सहने की अपूर्व क्षमता उत्पन्न होती है।

4. अनुप्रेक्षा - कायोत्सर्ग में अवस्थित व्यक्ति अनुप्रेक्षा या भावना का स्थिरतापूर्वक अभ्यास करता है।

5. ध्यान - कायोत्सर्ग में शुभ ध्यान का सहज अभ्यास हो जाता है।

6. अतिचार-विशुद्धि -जैन मुनि की सम्पूर्ण अतिचार-विशुद्धि की प्रक्रिया कायोत्सर्ग के साथ जुड़ी हुई है। प्रतिक्रमण में साधक अपने पापों की आलोचना करता है, जिससे उसका चित्त निर्मल हो जाता है। चित्त निर्मल होने के बाद कायोत्सर्ग स्वत: सधने लगता है।

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार कायोत्सर्ग से निम्न लाभ होते हैं -

1. कायोत्सर्ग प्रायष्चित करने की एक आध्यात्मिक विधि है, जिससे दोषों का परिमार्जन हो जाता है।

2. कायोत्सर्ग से अनासक्ति का विकास होता है।

3. कायोत्सर्ग आत्मानुभूति का प्रथम सोपान है, उसका आधार है भेद-विज्ञान।

4. कायोत्सर्ग से विघ्न एवं उपसर्गों का निवारण होता है।

5. कायोत्सर्ग से षारीरिक स्तर पर प्रवृत्ति बहुलता से उत्पन्न बीमारियों का निदान संभव है। षिथिल अवस्था में शक्ति संचय सहज होता है।

6. कायोत्सर्ग से षरीर की अप्रकम्प अवस्था का विकास होने से कार्मण षरीर में कर्मों का विस्फोट होता है।

7. कायोत्सर्ग से ज्ञाता-द्रश्टा भाव का विकास होता है।

8. कायोत्सर्ग से विवेक चेतना का विकास होने पर संवेग नियंत्रण की क्षमता का जागरण होता है।

9. कायोत्सर्ग में स्वत: सुझावों का अवचेतन मन तक पहुंचने से रूपान्तरण षीघ्रता से घटित होता है।

6 प्रत्याख्यान के लाभ – प्रत्याख्यान अमर्यादित जीवन को मर्यादित या अनुषासित बनाता है। जैन परम्परा के अनुसार आश्रव एवं बंधन का एक कारण अविरति भी कहा जाता है। प्रत्याख्यान अविरति का निरोध करता है। प्रत्याख्यान से साधक अषान्ति के मूल कारण आसक्ति एवं तृश्णा को नश्ट कर देता है। त्याग से संतोश गुण का विकास होता है। प्रत्याख्यान से संकल्पषक्ति का विकास होता है। जीवन प्रेय से श्रेय मार्ग की ओर प्रषस्त होता है। प्रत्याख्यान में आत्मानुषासन, स्वावलम्बन, कशायोपषमन, परिग्रह संयमन एवं निर्ममत्व भाव का विकास होता है। बहिर्मुखी चेतना षुभ योग द्वारा अन्तर्मुखी बन जाती है।

उपसंहार

इस प्रकार यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि जैन आचार की सार्वभौमिक प्रासंगिकता महावीर के युग में भी थी, आज भी है एवं भविष्य में भी रहेगी। सप्त कुठयसन वर्जन एवं षडावश्यक की अनुपालना न केवल जैन नागरिक के लिए आवश्यक है अपितु संपूर्ण मानव जाति एवं राष्ट्र हित में होने से संपूर्ण मानव जाति के लिए आवश्यक है।